

नीति-धर्म

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

8

नीति-धर्म

[नीति-नियम और उनके पालन-संबंधी विचार]

महात्मा गांधी

१९५९

सस्ता साहित्य मण्डल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद की
सहमति से प्रकाशित

तीसरी बार : १९५९
मूल्य
सैंतीस नये पैसे

मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

प्रस्तावना

इन दिनों दुनिया में पाखंड बढ़ गया है। मनुष्य चाहे जिस धर्म का माननेवाला हो, उस धर्म के ऊपरी रूपमात्र का विचार करता है और अपने सच्चे फर्ज को भूल जाता है। अत्यंत धन-संग्रह के कारण दूसरे आदमियों को क्या कष्ट मिलता है या मिलेगा, इसका ख्याल हम शायद ही करते हैं। अतिशय सुकुमार नन्हें-नन्हें प्राणियों को मारकर अगर उनकी खाल के मुलायम मोज़े बनाये जा सकें तो यूरोप की महिलाओं को उनकी खाल के मोज़े पहनने में ज़रा भी हिचक न होगी। मि० राकफेलर की गिनती दुनिया के बड़े-से-बड़े धन-कुबेरों में है। दुनिया जानती है कि पैसा इकट्ठा करने में उन्होंने नीति के कितने ही नियमों को तोड़ा है। यों चारों ओर देखकर यूरोप और अमरीका के बहुतेरे मनुष्य धर्म के विरोधी हो बैठे हैं। वे यह दलील देते हैं कि दुनिया में अगर कोई भी धर्म हो तो दुराचरण, जो इतना बढ़ गया है, वह बढ़ना न चाहिए। यह विचार भूल से भरा हुआ है। मनुष्य अपने सदा के अभ्यास के अनुसार अपना दोष न देखकर अपने औज़ार को दोष देता है, वैसे ही लोग अपनी खोट का विचार न कर धर्म को ही बुरा कहते हैं और स्वच्छंद होकर जो जी में आये वह करते और कहते हैं। यह देखकर अमरीका और यूरोप में ऐसे बहुत से लोग निकल आए हैं जो यह सोचकर कि यों सब धर्मों का नाश हो जाय तो दुनिया की भारी हानि होगी और लोग नीति का रास्ता छोड़ देंगे, जुदा-जुदा रास्ते से लोगों को नीति-पथपर लाने का प्रयास कर रहे हैं। एक ऐसा मंडल स्थापित हुआ है जो सब धर्मों के तत्त्वों की खोज करके यह तथ्य प्रस्तुत करता है कि सभी धर्म नीति तो सिखाते ही हैं, उनका आधार भी अधिकांश में नीतिक नियम ही होते हैं। और कोई आदमी धर्म विशेष को माने या न माने, पर वह नीति के नियमों का पालन न कर सके तो ऐसे आदमी के किये इस लोक या परलोक

में अपना या दूसरों का भला नहीं होने का। जो लोग कुछ पंथों-सम्प्रदायों में पाखंड का बोलबाला देखकर धर्म मात्र को नफ़रत की निगाह से देखते हैं ऐसे लोगों की शंकाओं का समाधान करना इस मंडल का उद्देश्य है। इस मंडल को चलाने वाले सब धर्मों का सार निकाल कर उसमें से केवल नीति के विषयों की चर्चा करते हैं। इस मत को वे नीति-धर्म अथवा 'एथिकल-रिलिजन' कहते हैं। इस मंडल का काम किसी भी धर्म का खंडन करना नहीं है। चाहे जिस धर्म के मानने वाले उसमें दाखिल हो सकते हैं। इस मंडल का लाभ यह होता है कि इस तरह के लोग अपने धर्म का अधिक दृढ़ता से पालन करने लगते हैं और उसमें नीति के विषय में जो उपदेश दिये गए हों, उन पर अधिक ध्यान देते हैं। इस मंडल के सदस्य पक्के मन से मानते हैं कि मनुष्य को नीति का पालन करना ही चाहिए और यह न हुआ तो दुनिया का विधान, व्यवस्था टूट जायगी और अंत में भारी हानि होगी। मि० साल-टर नाम के अमरीका के एक विद्वान हैं। उन्होंने एक सुदंर पुस्तक प्रकाशित की है। उसमें धर्म की चर्चा नाम को भी नहीं, पर उसके उपदेश सभी आदमियों पर घटित हो सकते हैं। इस पुस्तक के लेखक के विषय में इतना ही कहना आवश्यक है कि जितना करने की सलाह वह हमें देता है उतना खुद भी करता है। पाठकों से मेरा अनुरोध है कि जो कोई भी नीतिवचन उनको सच्चे जान पड़ें, उनके अनुसार वे चलने का यत्न करें तो मैं अपने इस प्रयास को सफल मानूंगा।

—मो० क० गांधी

विषय-सूची

नीति-धर्म

: १ :

प्रारंभ

जिस वस्तु से हमारे मन में अच्छे विचार उठते हों वह हमारी नीति, सदाचार का फल मानी जाती है। दुनिया के साधारण शास्त्र बताते हैं कि दुनिया कैसी है। नीति का मार्ग यह बताता है कि दुनिया कैसी होनी चाहिए। इस मार्ग के द्वारा हम यह जान सकते हैं कि मनुष्य को किस तरह आचरण करना चाहिए। मनुष्य के मन के भीतर सदा दो दरवाजे होते हैं—एक से वह यह देख सकता है कि वह खुद कैसा है, दूसरे से उसे कैसा होना चाहिए, इसकी कल्पना कर सकता है। देह, दिमाग और मन तीनों को अलग-अलग देखना-समझना हमारा काम है। पर इतना ही करके रुक जायं तो इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी हम उसका कोई लाभ नहीं उठा सकते। अन्याय, दुष्टता, अभिमान आदि का क्या फल होता है और जहाँ ये तीनों इकट्ठे हों वहां कैसी खराबी होती है, यह जान लेना भी जरूरी है। और जान

लेना ही काफी नहीं है, बल्कि जान कर आचरण करना है। नीति का विचार तो वास्तुविशारद के नकशे के जैसा है, जो यह बताता है कि घर कैसा होना चाहिए। हम घर बना चुके हों तो नकशा हमारे लिए बेकार हो जाता है। वैसे ही आचरण न किया हो तो नीति का विचार नकशे की तरह बेकार हो जाता है। बहुतेरे नीति के वचन याद करते हैं, उस विषय पर भाषण करते हैं, पर उसके अनुसार चलते नहीं और चलना चाहते भी नहीं। कितने ही तो यही मानते हैं कि नीति के बिचारों को इस लोक में नहीं, परलोक में अमल में लाना चाहिए। यह कुछ सराहने लायक विचार नहीं माना जा सकता। एक विचारवान् मनुष्य ने कहा है कि हमें संपूर्ण होना हो तो हमें आज से ही नीति के अनुसार चलना है, चाहे इसमें कितने ही कष्ट क्यों न सहन करने पड़ें। ऐसे विचार सुन कर हमें चौंक न उठना चाहिए, बल्कि अपनी जिम्मेदारी समझ कर तदनुसार व्यवहार करने में प्रसन्न होना चाहिए। महान् योद्धा पेम्ब्रोक जब ओबेरोक के युद्ध की समाप्ति पर अर्ल डरबी से मिला तो उन्होंने उसे खबर दी कि लड़ाई जीत ली गई। इस सूचना पर पेम्ब्रोक बोल उठा, "आपने मेरे साथ भलमनसी नहीं बरती। मुझे जो मान मिलता वह आपने मेरे हाथ से छीन लिया, मुझे लड़ाई में शामिल होने को बुलाया तो फिर मेरे पहुंचने के पहले लड़ाई न लड़नी

थी।" इस प्रकार नीति-मार्ग में जब किसीको जिम्मेदारी लेने का हौसला हो तभी वह उस रास्ते पर चल सकेगा।

खुदा या ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, संपूर्ण है, उसके बड़प्पन, उसकी दया, उसके न्याय की सीमा नहीं है। अगर ऐसी बात है तो हम लोग जो उसके बंदे समझे जाते हैं, नीति-मार्ग को कैसे छोड़ सकते हैं? नीति का आचरण करनेवाला विफल हो तो इसमें कुछ नीति का दोष नहीं है, बल्कि जो लोग नीति भंग करते हैं, वे ही अपने-आपको दोषभाजन बनाते हैं।

नीति-मार्ग में नीति का पालन करके उसका प्रतिफल प्राप्त करने की बात आती ही नहीं। मनुष्य कोई भला काम करता है तो शाबाशी पाने के लिए नहीं, बल्कि इसलिए कि भलाई किये बिना उससे रहा नहीं जाता। खुराक और भलाई दोनों की तुलना करने पर भलाई ऊंचे प्रकार का आहार सिद्ध होगी और कोई दूसरा आदमी भलाई करने का अवसर दे तो भलाई करनेवाला अवसर देनेवाले का एहसानमंद होता है। वैसे ही जैसे भूखा अन्न देनेवाले को दुआएं देता है।

यह नीति-मार्ग ऐसा नहीं है कि उसकी बात करते हुए बिलकुल ऊपर-ऊपर से मनुष्यता आ जाय। उसका अर्थ यह नहीं है कि हम थोड़े अधिक मेहनती हो जायं, थोड़ा अधिक पढ़-लिख लें, थोड़ा अधिक साफ-सुथरे रहें, इत्यादि। यह सब

भला होने और अधिक भलाई करने की इच्छा करते रहना चाहिए। ऐसी इच्छाओं के पूरा करने के लिए जो आचरण किया जाय, उसको सच्ची नीति कहते हैं।

हमारे पास घरबार न हो तो इसमें लज्जित होने की कोई बात नहीं है; पर घरबार हो और उसका दुरुपयोग करें; जो धंधा-रोजगार करें, उसमें लोगों को ठगें तो हम नीति के मार्ग से च्युत हो गये। जो करना हमें उचित है उसे करने में नीति है। इस तरह नीति की आवश्यकता हम कितने ही उदाहरणों से सिद्ध कर सकते हैं। जिस जनसमाज या कुटुंब में अनीति के बीज––जैसे फूट, असत्य इत्यादि––देखने में आते हैं वह जन-समाज, कुटुंब गिरकर टूट जाता है। फिर धंधे-रोजगार की मिसाल ली जाय तो हम देखेंगे कि ऐसा आदमी एक भी नहीं दिखाई देता जो यह कह सके कि सत्य का पालन नहीं करना चाहिए। न्याय और भलाई का असर कुछ बाहर से नहीं हो सकता, वह तो हममें ही रहता है। चारसौ साल पहले यूरोप में अन्याय और असत्य अति प्रबल थे। वह समय ऐसा था कि लोग घड़ीभर शांति से न रह सकते थे। इसका कारण यह था कि लोगों में नीति न थी। हम नीति के समस्त नियमों का दोहन करें तो देखेंगे कि मानव-जाति का भला करने का प्रयास ही ऊंची नीति है। इस कुंजी से नीतिरूपी संदूक को खोलकर देखा जाय तो नीति के दूसरे नियम हमें उसमें मिल जायंगे।

इन अध्यायों के नीचे हम गुजराती या उर्दू कवियों की नीति-नियमों से संबंध रखनेवाली कविताएं चुनकर देते जायंगे, इस आशा से कि उनका लाभ हमारे सभी पाठक लेंगे और हमारे युवक पाठक तो उन्हें कंठस्थ भी करेंगे। इसका श्रीगणेश हम श्रीमलबारी की पुस्तक 'आदम अने तेनी दुनिया' ('आदम और उनकी दुनिया') से कर रहे हैं[1]।

क्युं (क्यों) मुश्ताक होके तुं (तू) फिरता बिरादर ?
अये (ऐ) दाना[2] तवाना[3] होनार तसे हाजर (होना है तुझे, हाजिर)
चले गये बड़े फ़िलसुफ़ां[4] पहलवानां।
अरे दोस्त दाना, तुं (तू) होगा दिवाना (दीवाना)।

न दाना की दानाई हर दम टकेगी (टिकेगी);
न नेकां बी (भी) हरदम गुजारेंगे नेकी।
किसे यारी हरदम ने (को) देता ज़माना;
अरे दोस्त दाना, तुं (तू) होगा दिवाना।

क़ुवत[5] (क़ूवत) पीलतन की तुं (तू) लेके फिरेगा।
ज़माना अचानक शिकस्त[6] आके देगा।
अक़ल की नक़ल बेअक़ल बस बनाना;
अरे दोस्त दाना तुं (तू) होगा दिवाना।

---

[1] उर्दू-हिंदी पद्यों के कई शब्द अशुद्ध या गुजराती रूप में हैं। उनके वही रूप रहने दिये गये हैं और शुद्ध रूप कोष्ठ में दे दिये गये हैं।—अनु०

[2] बुद्धिमान, [3] बलवान, [4] फ़िलासफ़र, तत्त्ववेत्ता; [5] बल; [6] हार; पराजय;

गुजारे (की) अवल बचगी की बादशाही;
होनारत[1] दरद (दर्द) देवे जमकी गवाही।
बेताका (क) त की (कि) स राह उठाना सोलाना (सुलाना);
अरे दोस्त दाना, तुं (तू) होगा दिवाना।

न दुनिया में तेरा हुवा को (कोई) न होगा,
न तुं (तू) तेरा होवे हसेगा वा रोगा (रोयेगा),
सिवा पाक दादार[2] सबकोइ (कोई) बेगाना;
अरे दोस्त दाना, तुं (तू) होगा दिवाना।

: ३ :

नीतियुक्त काम कौनसा ?

क्या हम यह कह सकते हैं कि अमुक काम नीतियुक्त है ? यह सवाल करने में नीतिवाले और बिना नीति के कामों की तुलना करने का हेतु नहीं है, बल्कि जिन कामों के खिलाफ लोग कुछ कहते नहीं और कितने ही जिन्हें नीतियुक्त मानते हैं, उनके विषय में विचार करना है। हमारे बहुतेरे कामों में खास तौर से नीति का समावेश नहीं होता। अधिकतर हम लोग साधारण रीति-रिवाज के अनुसार आचरण करते हैं। इस तरह रूढ़ि के अनुसार चलना बहुत समय आवश्यक होता है। वैसे नियमों का अनुसरण हम न करें तो अंधा-

[1] होने वाली पीड़ा; [2] परमेश्वर।

धुंधी चलने लगे और दुनिया का कार-बार बंद हो जाय, पर यों रूढ़ि के पीछे चलने को नीति का नाम देना मुनासिब नहीं कहा जा सकता।

नीतियुक्त काम तो वह कहा जाना चाहिए, जो हमारा अपना है यानी जो हमारी इच्छा से किया गया हो। जबतक हम मशीन के पुरजे की तरह काम करते हों तबतक हमारे काम में नीति का प्रवेश नहीं होता। मशीन के पुरजे की तरह काम करना हमपर फर्ज हो और हम करें तो यह विचार नीतियुक्त है, क्योंकि हम उसमें विवेक-बुद्धि से काम लेते हैं। यह यांत्रिक काम और वह काम करने का विचार करना, इन दोनों में जो भेद है, वह ध्यान में रखने योग्य है। राजा किसीका अपराध माफ कर दे तो उसका यह काम नीतियुक्त हो सकता है; पर माफी की चिट्ठी ले जानेवाले चपरासी का राजा के किये हुए नीतिमय कार्य में यांत्रिक भाग है। हां, चपरासी यह समझकर चिट्ठी ले जाय कि चिट्ठी ले जाना उसका फर्ज है तो उसका काम नीतियुक्त हो सकता है। जो आदमी अपनी बुद्धि और दिमाग से काम नहीं लेता और जैसे लकड़ी बहती है वैसे प्रवाह में बहता जाता है वह नीति को कैसे समझेगा ? कितनी ही बार मनुष्य रूढ़ि के विरुद्ध होकर परमार्थ करने के इरादे से कर्म करता है। महावीर वेंडल फिलिप्स ऐसा ही पुरुष था। उसने एक बार लोगों के सामने भाषण करते हुए कहा था, "जबतक तुम लोग खुद विचार करना

श्रौर उसे प्रकट करना नहीं सीख लेते तबतक मेरे बारे में तुम क्या सोचते हो, इसकी मुझे चिंता नहीं है।" यह स्थिति हमें तबतक प्राप्त नहीं होने की, जबतक हम यह मानने श्रौर श्रनुभव न करने लगें कि सबका श्रंतर्यामी ईश्वर हम सबके कार्य का साक्षी है।

इस तरह किया हुश्रा काम स्वतः श्रच्छा हो, इतना ही काफी नहीं है, वह काम हमने श्रच्छा करने के इरादे से किया हो, यह भी ज़रूरी है, श्रर्थात् कार्य-विशेष में नीति होना, न होना करनेवाले के इरादे पर श्रवलंबित होता है। दो श्रादमियों ने एक ही काम किया हो, फिर भी एक का काम नीतियुक्त माना जा सकता है, दूसरे का नीतिरहित। जैसे एक श्रादमी दया से द्रवित होकर गरीबों को खाना देता है। दूसरा मान प्राप्त करने या इस तरह के स्वार्थी विचार से वही काम करता है। दोनों का काम एक ही है, फिर भी पहले का नीतियुक्त माना जायगा श्रौर दूसरे का नीति-रहित। नीतियुक्त श्रौर नीतिरहित शब्दों के बीच जो श्रंतर है, वह यहां पाठकों को याद रखना है। यह भी हो सकता है कि नीतियुक्त काम का श्रसर श्रच्छा हुश्रा, यह सदा दिखाई न दे सके। नीति के विषय में विचार करते हुए हमें इतना ही देखना है कि किया हुश्रा काम शुभ है श्रौर शुद्ध हेतु से किया गया है। उसके फलपर हमारा बस नहीं, फल देनेवाला तो एकमात्र ईश्वर है। शहंशाह सिकंदर को इति-

हासकारों ने महान् माना है। वह जहां-जहां गया वहां यूनानी शिक्षा, शिल्प-प्रथाओं आदि को प्रचलित किया और उसका फल हम स्वाद से चख रहे हैं। पर यह सब करने का उद्देश्य बड़प्पन पाना था, अतः कौन कह सकेगा कि उसके काम में नीति थी ? वह महान् भले ही कहलाया, पर नीतिमान नहीं कहा जा सकता।

ऊपर प्रकट किये हुए विचारों से साबित होता है कि प्रत्येक नीतियुक्त कार्य नेक इरादे से किया हुआ हो, इतना ही काफी नहीं है; बल्कि वह बिना दबाव के भी किया हुआ होना चाहिए। मैं दफ्तर देर से पहुंचूं तो नौकरी से हाथ धोऊंगा, इस डर से मैं तड़के उठूं तो इसमें रत्तीभर भी नीति नहीं है। इसी तरह मेरे पास पैसा न हो, इसलिए मैं गरीबी और सादगी की जिंदगी बिताऊं तो इसमें भी नीति का योग नहीं है, पर मैं धनवान होते हुए भी सोचूं कि मैं अपने आस-पास दरिद्रता और दुःख देख रहा हूं, ऐसे समय मुझसे ऐश-आराम कैसे भोगा जा सकता है, मुझे भी गरीबी में और सादगी के साथ रहना ही चाहिए तो इस प्रकार अपनाई हुई सादगी नीतिमय मानी जायगी। इसी तरह नौकर छोड़कर भाग जायंगे इस डर से उनके साथ हमदर्दी दिखाई जाय या उन्हें अच्छी या अधिक तनखाह दी जाय तो इसमें नीति नहीं रहती, बल्कि इसका नाम स्वार्थ-बुद्धि है। मैं उनका भला चाहूं, मेरी

समृद्धि में उनका हिस्सा है, यह समझकर उन्हें रखूं तो इसमें नीति हो सकती है, अर्थात् नीतिपूर्वक किया हुआ काम वह होगा जो जोर-जबर्दस्ती से या डरकर न किया गया हो। इंगलैंड के राजा दूसरे रिचर्ड के पास जब आंखें लाल किये हुए किसानों का समुदाय अनेक अधिकार मांगने पहुंचा तो उसने अपने हाथ से अधिकार-पत्र लिखकर उसके हवाले कर दिया, पर जब किसानों का डर दूर हो गया तब उस फरमान को उसने जोर-जुल्म से वापस ले लिया। अब कोई कहे कि रिचर्ड का पहला काम नीतियुक्त और दूसरा अनीतियुक्त था तो यह उसकी भूल है। रिचर्ड का पहला काम केवल भय से किया गया था, इसलिए उसमें नीति छू तक नहीं गई थी।

जैसे नीतियुक्त काम में डर या जोर-जबर्दस्ती न होनी चाहिए वैसे ही उसमें स्वार्थ भी न होना चाहिए। ऐसा कहने में यह हेतु नहीं है कि जिस काम में स्वार्थ हो वह बुरा है। पर उस काम को नीतियुक्त कहें तो यह नीति को धब्बा लगाने के समान है। ईमानदारी अच्छी पालिसी (व्यवहारनीति) है, यह सोचकर अपनाई हुई ईमानदारी अधिक दिन नहीं टिक सकती। शेक्सपियर कहता है कि जो प्रीति लाभ की दृष्टि से की गई हो वह प्रीति नहीं।[1]

[1]एक उर्दू कवि ने भी यही बात कही है—"दोस्ती और किसी गरज के लिए, यह तिजारत है, दोस्ती ही नहीं।"—अनु०

जैसे इस लोक में लाभ के उद्देश्य से किया हुआ काम नीतियुक्त नहीं माना जा सकता वैसे ही परलोक में लाभ मिलेगा, इस आशा से किया हुआ काम भी नीतिरहित है। भलाई भलाई के लिए ही करनी है, यों समझकर किया हुआ काम नीतिमय माना जायगा। महान जेवियर ने ईश्वर से प्रार्थना की थी कि मेरा मन सदा स्वच्छ रहे। उसके मत से भगवान की भक्ति इसलिए नहीं करनी थी कि मरने के बाद उत्तम दशा भोगने को मिले, वह भक्ति इसलिए करता था कि वह मनुष्य का कर्त्तव्य है। महान भगवद्भक्त थेरिसा अपने दाहिने हाथ में मशाल और बाएं हाथ में पानी की बाल्टी यह जताने के लिए रखना चाहती थी कि मशाल से स्वर्ग के सुख को जला डाले और पानी से दोजख की आग बुझा दे, जिससे इन्सान दोजख के भय के बिना खुदा की इबादत करे। इस तरह की नीति का पालन उस आदमी का काम है जो सिर पर कफन बांधे फिरता हो। मित्र के साथ तो सच्चे रहना, और दुश्मन से दग़ाबाजी करना यह नामर्दी का काम है। डर-डरकर भले काम करनेवाला नीति-रहित ही माना जायगा। हेनरी क्लेबक दयालु और स्नेहभरे स्वभाव का माना जाता था। उसने अपने लोभ के आगे अपनी नीति की बलि दे दी। डेनियल वेस्टर वीर पुरुष था; पर पैसे के लिए एक बार वह कातर हो गया। एक हलके काम से अपने

दूसरे अच्छे कामों को धो डाला। इस उदाहरण से हम देख सकते हैं कि मनुष्य की नीति की परीक्षा करना कठिन है, क्योंकि उसके मन की परख हम नहीं कर सकते। इसी प्रकार इस प्रकरण के आरंभ में नीतियुक्त काम कौन है यह जो प्रश्न किया गया है, उसका जवाब भी हमें मिल चुका। कैसे आदमी नीति का पालन कर सकते हैं यह हमने अनायास ही देख लिया।

ऊपर के विषय से मेल रखनेवाली कविता :

हरिनो मारग छे शूरानो कायरनुं नहि काम जोने,
परथम पहेलुं मस्तक मूकी, वळती लेवुं नाम जोने।
सुत वित्त दारा शीश समर्पे ते पामे रस पीवा जोने;
सिंधु मध्ये मोती लेवा, मांहि पड्या मरजीवा जोने।
मरण आग में ते भरे मुट्ठी, दिलनी दुग्धा वामे जोने;
तीरे उभा ते जूए तमाशो, ते कोडी नव पामे जोने;
प्रेम पंथ पावकनी ज्वाळा, भाळी पाछा भागे जोने;
मांहि पड्या ते महासुखमाणे, देखनारा दाझे जोने।
माथा सारे मोंघी वस्तु, सांपडवी नहि सहेल जोने;
महापद पाम्या ते नर जीव्या, मूकी मननो मेल जोने।

भावार्थ——हरि का मार्ग शूर-वीर के लिए है, उसमें कायर का काम नहीं। उसपर चलनेवाला पहले अपना सिर दे, उसके बाद उसका नाम ले। जो धन-दौलत, स्त्री-पुत्र और अंत में अपना शीश भी समर्पण कर दे, वही उसका रस पी सकता

है। मरजीया मोती पाने के लिए समुद्र के भीतर पैठता है। जो मौत के मुंह में पैठे वही मोतियों से अपनी मुट्ठी भर और हृदय की पीड़ा मेट सकता है। किनारे खड़ा रहनेवाला तमाशा भर देखता है, उसके हाथ एक कौड़ी भी नहीं लगती। प्रेम का पंथ पावक की ज्वाला है। जो उसके भीतर घुसता है वह महा-सुख अनुभव करता है। देखकर भागने और दूर खड़ा रहनेवाला उसकी आंच से जलता है। सिर देकर उसके बदले दुर्लभ वस्तु का पाना सरल नहीं है। ऐसे लोग अपने मन का मैल त्याग करके महापद को प्राप्त कर अमर होते हैं।

: ४ :

अच्छा नियम कौनसा है ?

अमुक काम अच्छा है या बुरा, इस बारे में हम सदा मत प्रकट किया करते हैं। कुछ कामों से हमें संतोष मिलता है और कुछ हमारी अप्रसन्नता के कारण होते हैं। कार्यविशेष के भले या बुरे होने का आधार इस बात पर नहीं होता कि वह काम हमारे लिए लाभ-जनक है या हानिकारक; पर उसकी तुलना करने में हम जुदे ही पैमाने से काम लिया करते हैं। हमारे

मन में कुछ विचार रम रहे होते हैं, उन्हींके आधार पर हम दूसरे आदमियों के कामों की परीक्षा किया करते हैं। एक आदमी ने दूसरे आदमी का कोई नुकसान किया हो तो उसका असर अपने ऊपर हो या न हो, उस काम को हम खराब मानते हैं। कितनी ही बार नुकसान करनेवाले की ओर हमारी हमदर्दी हो तो भी उसका काम बुरा है, यह कहते हमें तनिक भी हिचक नहीं होती। यह भी हो सकता है कि कितनी ही बार हमारी राय गलत ठहरे। मनुष्यों का हेतु हम सदा देख नहीं सकते, इससे हम गलत परीक्षा किया करते हैं। फिर भी हेतु के प्रमाण में काम की परीक्षा करने में बाधा नहीं होती। कुछ बुरे कामों से हमें लाभ होता है, फिर भी हम मन में तो समझते ही हैं कि वे बुरे।

अतः यह सिद्ध हुआ कि किसी काम के भले या बुरे होने का आधार मनुष्य का स्वार्थ नहीं होता। उसकी इच्छाएं भी इसका आधार नहीं होतीं। नीति और मन की वृत्ति के बीच सदा संबंध देखने में नहीं आता। बच्चे पर ममता होने के कारण हम उसे कोई खास चीज देना चाहते हैं; पर वह वस्तु हानिकारक हो तो हम मानते हैं कि उसे देने में अनीति है। स्नेह दिखाना बेशक अच्छी बात है, पर नीति-विचार के द्वारा उसकी हद न बांध दी गई हो तो वह विषरूप हो जाता है।

हम यह भी देखते हैं कि नीति के नियम अचल हैं। मत बदला करते हैं, पर नीति नहीं बदलती। हमारी आंखें खुली हों तो हमें सूरज दिखाई देता है, बंद हों तो नहीं दिखाई देता। इसमें हमारी निगाह में हेर-फेर हुआ, न कि सूरज के होने में। नीति के नियमों के बारे में भी यही समझना चाहिए। हो सकता है कि अज्ञान दशा में हम नीति को न समझ सकें। जब हमारा ज्ञानचक्षु खुल जाता है तब हमें समझने में कठिनाई नहीं पड़ती। मनुष्य सदा भले की ओर ही निगाह रखे, ऐसा क्वचित् ही होता है। इससे अकसर स्वार्थ की दृष्टि से देखकर अनीति को नीति कहता है। ऐसा समय तो अभी आने को है जब मनुष्य स्वार्थ का विचार त्यागकर नीति-विचार की ओर ही ध्यान देगा। नीति की शिक्षा अभी बिलकुल बचपन की अवस्था में है। बेकन और डार्विन के पहले शास्त्र की जो स्थिति थी वही आज नीति की है। लोग सच्चा क्या है उसे देखने को उत्सुक थे। नीति के विषय को समझने के बदले वे पृथ्वी आदि के नियमों की खोज में लगे हुए थे। ऐसे कितने विद्वान् आपको दिखाई दिये हैं, जिन्होंने लगन के साथ कष्ट सहकर पिछले वहमों को एक ओर रखकर नीति की खोज में जिंदगी बिताई हो ? जब प्राकृतिक रहस्यों की खोज करनेवाले आदमियों की तरह वे नीति की खोज करने में तल्लीन रहें तब हम यह मानें कि अब नीति-

विषय के विचार इकट्ठे किये जा सकते हैं। शास्त्र या विज्ञान के विचारों के विषय में आज भी विद्वानों में जितना मतभेद रहता है उतना नीति के नियमों के विषय में होना मुमकिन नहीं। फिर भी हो सकता है कि कुछ अरसे तक हम नीति के नियमों के विषय में एक राय न रख सकें; पर उसका अर्थ यह नहीं है कि हम खरे-खोटे का भेद नहीं समझ सकते।

हमने देख लिया कि मनुष्यों की इच्छा से अलग नीति का कोई नियम है, जिसे हम नीति का नियम कह सकते हैं। जब राजनैतिक विषयों में हमें नियम-कानून दरकार है तब क्या हमें नीति के नियमों का प्रयोजन नहीं है, भले ही वह नियम मनुष्य-लिखित न हो? वह मनुष्य-लिखित होना भी न चाहिए। और अगर हम नीति-नियमों का अस्तित्व स्वीकार करें तो जैसे हमें राजनैतिक नियमों के अधीन रहना पड़ता है वैसे ही नीति के नियमों के अधीन रहना भी हमारा कर्त्तव्य है। नीति के नियम राजनैतिक और व्यावसायिक नियमों से अलग तथा उत्तम हैं। मुझसे या दूसरे किसीसे यह नहीं बन सकता कि व्यावसायिक नियमों के अनुसार न चलकर मैं गरीब बना रहूं तो क्या हुआ?

यों नीति के नियम और दुनियादारी नियम के बीच भारी भेद है, क्योंकि नीति का वास हमारे हृदय में है। अनीति का आचरण करनेवाला मनुष्य भी अपनी

अनीति कबूल करेगा—झूठा सच्चा कभी नहीं हो सकता। और जहां जन-समाज बहुत दुष्ट हो वहां भी लोग नीति के नियमों का पालन न करते हों तो भी पालन का ढोंग करेंगे, अर्थात् नीति का पालन कर्त्तव्य है, यह बात वैसे आदमियों को भी कबूल करनी पड़ती है। ऐसी नीति की महिमा है। इस प्रकार की नीति रीति-रिवाज या लोकमत की परवा नहीं करती। लोकमत या रीति-रिवाज जहांतक नीति के नियम का अनुसरण करता दिखाई दे वहीं तक नीतिमान पुरुष को वह बंधनकारक है।

ऐसा नीति का नियम कहां से आया? कोई राजा, बादशाह उसे गढ़ता नहीं, क्योंकि भिन्न-भिन्न राज्यों में जुदा-जुदा कानून-कायदे देखने में आते हैं। सुकरात के जमाने में, जिस नीति का अनुसरण वह करता था, बहुत-से लोग उसके विरुद्ध थे, फिर भी सारी दुनिया कबूल करती है कि जो नीति उसकी थी वह सदा रही है और रहेगी। अंग्रेजी कवि राबर्ट ब्राउनिंग कह गया है कि कभी कोई शैतान दुनिया में द्वेष और झूठ की दुहाई फिरा दे तो भी न्याय, भलाई और सत्य ईश्वरीय ही रहेंगे। इसपर से यह कह सकते हैं कि नीति के नियम सर्वोपरि हैं और ईश्वरीय हैं।

ऐसे नियम का भंग कोई प्रजा या मनुष्य अंततक नहीं कर सकता। कहा है कि जैसे भयानक बवंडर अंत में उड़ जाता है वैसे ही अनीतिमान् पुरुष का

भी नाश होता है। असीरिया और बेबीलोन में अनीति का घड़ा भरा नहीं कि तत्काल फूट गया। रोम ने जब अनीति का रास्ता पकड़ा तब उसके महान् पुरुष उसका बचाव न कर सके। ग्रीस की जनता बुद्धिमान थी, पर उसकी बुद्धिमानी अनीति को टिका न सकी। फ्रांस में जब विप्लव हुआ, वह भी अनीति के ही विरोध में। वैसे ही अमरीका में भला वेंडल फिलिप्स कहता है कि अनीति राजगद्दी पर बैठी हो तो भी टिकने की नहीं। नीति के इस अद्भुत नियम का जो मनुष्य पालन करता है वह ऊपर उठता है, जो कुटुंब पालन करता है वह बना रह सकता है और जिस समाज में उसका पालन होता है उसकी वृद्धि होती है। जो प्रजा इस उत्तम नियम का पालन करती है वह सुख, स्वतंत्रता और शांति को भोगती है।

ऊपर के विषय से मेल खानेवाली कविता :

मन तुंहि तुंहि बोलेरे, आसुपना जेवु तल तारूं;
अचानक उड़ीजाशे रे, जेम देवतामां दारू।
झाकळ जळपळमां वळीजाशे, जेम कागळने पाणी;
काया वाडी तारी एम करमाशे, थइ जाशे धूळधाणी।
पाछळथी पस्ताशेरे, मिथ्या करी मारूं मारूं।
काचनो कुंपो काया तारी, वणसतां न लागे वार।
जीवकायाने सगाई केटली, मूकी चाले बनमोझार,
फोकट फुल्यां फरवुंरे, ओचिन्तु थाशे अंधारूं।
जायुं ते तो सर्व जवानुं, उगरवानो उधारो;
देव, गांधर्व, राक्षसने माणस सउने मरणनो वारो।

आशानो महेल उंचोरे, नीचुं आ काचुं कारभारुं ।
चंचल चित्तमां चेतीने चालो, भाळो हरिनुं नाम,
परमारथ जे हाथे ते साथे करो रहेवानो विश्राम ।
धीरो धराधरथीरे कोई न थी रहेनारूं...मन०

—काव्यदोहन

भावार्थ—मन, यह तेरा सपने के-जैसा है । अचानक इस तरह उड़ जायगा जैसे आग में डाली हुई शराब । ओस का पानी पल में उड़ जायगा कागज पर पानी के समान । उसी प्रकार तेरी कायारूप बाड़ी सूखकर नष्ट हो जायगी । पीछे पछतायगा । तू व्यर्थ 'मेरा' 'मेरा' करता है । तेरी काया शीशे की कुप्पी जैसी है, उसके नष्ट होते देर न लगेगी । जीव और देह का नाता ही कितना ? एक दिन जीव उसे तजकर चल देगा । इस जीवन पर तेरा इतराना व्यर्थ है, अचानक एक दिन अंधकार हो जायगा । जो जन्मा है वह सभी जानेवाला है, इसमें से बचना कठिन है । देवता, गंधर्व, राक्षस, मनुष्य सबके मरण का दिन नियत है । आशा का महल ऊंचा और इस दुनिया का कच्चा काराबार नीचा है । तू चंचल चित्त में चेतकर चल और भगवान का नाम ले । जो परमार्थ कमा लेगा वही साथ जायगा । ऐसा ठिकाना पाने का उपाय कर, जहां तेरी आतमा को विश्राम मिले । । 'धीरो' (भगत) कहता है कि इस पृथ्वी से ऊपर कोई नहीं रहनेवाला है ।

: ५ :

नीति में धर्म का समावेश है ?

इस प्रकार का विषय कुछ विचित्र माना जायगा। आम खयाल यह है कि नीति और धर्म दो अलग चीजें हैं। फिर भी इस प्रकरण का उद्देश्य नीति को धर्म मानकर विचार करना है। इसमें कितने ही पाठक ग्रंथकार को उलझन में पड़ा हुआ मानेंगे। जो मानते हैं कि नीति में धर्म का समावेश नहीं होता और जो यह मानते हैं कि नीति हो तो धर्म की आवश्यकता नहीं है, दोनों पक्ष यह आरोप करेंगे। फिर भी नीति और धर्म में निकट संबंध है, यह दिखाना ग्रंथकार का निश्चय है। नीतिधर्म या धर्मनीति का प्रसार करने वाले मंडल भी धर्म को नीति द्वारा मानते हैं।

यह बात स्वीकार करनी होगी कि सामान्य विचार में नीति के बिना धर्म की स्थिति संभव है। ऐसे बहुतेरे दुराचारणी पुरुष देखने में आते हैं जो अघोर कर्म करते हुए भी धार्मिक होने का गर्व रखते हैं। इसके विपरीत स्व० मि० ब्रेडला जैसे नीतिमान पुरुष पड़े हैं, जो अपने-आपको नास्तिक कहने में गर्व अनुभव करते हैं और धर्म का नाम सुनकर भागते हैं। ये दोनों मतवाले मनुष्य भूल करते हैं और पहले मतवाले तो भूले ही नहीं हैं, धर्म के बहाने अनीति-

का आचरण कर खतरनाक भी हो गये हैं। इसलिए इस प्रकरण में मैं यह दिखाऊंगा कि बुद्धि और शास्त्र दोनों के द्वारा देखने से नीति और धर्म एक ही दिखाई देते हैं और उन्हें एक जगह रहना भी चाहिए।

पुरानी नीति केवल संसारी थी, यानी लोग यह सोचकर व्यवहार करते थे कि हम इकट्ठे रहकर कैसे निभा सकते हैं। यों करते-करते जो भली रीति थी वह कायम रही और बुरी रीति नष्ट हो गई। बुरी नीति नष्ट न होती तो उसके अनुसार चलनेवालों ही का नाश हो जाता। ऐसा होना हम आज भी देख रहे हैं। जो अच्छे रिवाज आदमी जाने-अनजाने चलाया करता है वह न नीति है और न धर्म। फिर भी दुनिया में जो काम नीति के अंदर आते हैं वे ऊपर बतलाये हुए भले रिवाज ही हैं।

फिर धर्म की कल्पना भी अकसर मनुष्य के मनमें महज ऊपर-ऊपर से ही रहती है। कितने ही समय हम अपने ऊपर आते हुए खतरों को दूर करने के लिए कोई धर्म मानते हैं। यों भय से या प्रीति से किये गये कार्य को धर्म मानना भूल है।

पर अंत में ऐसा वक्त आता है जब मनुष्य संकल्प-पूर्वक सोच-विचारकर नफा हो या नुकसान, वह मरे या जिये, दृढ़ निश्चय के साथ अपना सर्वस्व होमने को तैयार रहकर नीति के रास्ते पर चलता और बिना मुंह पीछे किये कदम बढ़ाता जाता है। तब माना

जायगा कि उसपर नीति का रंग चढ़ा।

ऐसी नीति धर्म के सहारे के बिना कैसे टिकेगी ? दूसरे आदमी का थोड़ा-सा नुकसान करके अपना कुछ लाभ कर सकूं तो मैं वह नुकसान क्यों न करूं ? दूसरे की हानि करके होनेवाला लाभ, लाभ नहीं, हानि है। यह घूंट मेरे गले से कैसे उतरे ? बिस्मार्क ने ऊपर से देखने में जर्मनी का हित करने के लिए अति भयानक कर्म किये। उसकी शिक्षा कहां चली गई ? सामान्य समय में बच्चों के साथ वह नीति के वचनों की जो बकवास करता था वे वचन कहां गुम हो गये ? उनको याद करके उसने नीति का पालन क्यों नहीं किया ? इन सारे प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट रीति से दिया जा सकता है। ये सारी अड़चनें आईं और नीति नहीं पाली गई, इसका कारण यही है कि इस नीति में धर्म नहीं समाया हुआ था। नीतिरूपी बीज को जबतक धर्मरूपी जल का सिंचन नहीं मिलता तबतक उसमें अंकुर नहीं फूटता। पानी के बिना वह बीज सूखा ही रहता है और लंबे अरसे तक पानी न पाये तो नष्ट भी हो जाता है। इस प्रकार हमने देख लिया कि सच्ची नीति में सच्चे धर्म का समावेश होना चाहिए। इसी बात को दूसरी रीति से यों कह सकते हैं कि धर्म के बिना नीति का पालन नहीं किया जा सकता, यानी नीति का आचरण धर्मरूप में करना चाहिए।

फिर हम यह भी देखते हैं कि दुनिया के बड़े

धर्मों में जो नीति के नियम बताये गये हैं वे अधिकांश में एक ही हैं और उन धर्मों के प्रचारकों ने यह भी कहा है कि धर्म की बुनियाद नीति है । नींव को खोद डालिये तो घर अपने-आप ढह जायगा । वैसे ही नीति रूपी नींव टूट जाय तो धर्मरूपी इमारत भी दो-चार दिन में ही भूमिसात हो जायगी ।

ग्रंथकार यह भी बताता है कि धर्म और नीति को एक कहने में कोई अड़चन नहीं है । डाक्टर क्वाइट इबादत में यह कहता है––"या खुदा, नीति के सिवा मुझे दूसरा खुदा न चाहिए ।" हम जरा सोचें तो देखेंगे कि हम मुंह से तो खुदा या ईश्वर को पुकारें और बगल में खंजर छिपाये रखें––'मुख में राम बगल में छुरी' को चरितार्थ करें तो क्या खुदा या ईश्वर हमारी फरियाद सुनेगा ? एक आदमी मानता है कि ईश्वर है, फिर भी उसकी सभी आज्ञाओं को तोड़ता है, दूसरा नाम से ईश्वर को नहीं पहचानता, पर अपने काम से उसको भजता है और ईश्वरीय नियमों में उनके कर्त्ता को देखता है और देखकर उसके कानूनों का पालन करता है––इन दोनों में हम किसे धर्मवान और नीतिमान मानें ? इस सवाल का जवाब देने में हम क्षणभर भी सोचे-विचारे बिना पक्के तौर पर कह सकते हैं कि दूसरा आदमी धर्मवान् और नीतिमान माना जायगा ।

ऊपर के विषय से मेल खानेवाली कविता——

प्रभु प्रभु पूछत भवगयो भई नहि प्रभु पिछान (पहचान);
खोजत सारा जग फीरो (फिर्‌यो) मिले न श्री भगवान्।
सहस्र (स) नाम से सोचकी एक न मिलो जवाब,
जप तप कि (की) ना जन्म तक (भर) हरी हरी (हरि हरि)——
गी (गि) ने हिसाब॥
साधु-संतो (संत) को संग किनो बेद-पुरान अभ्यास;
फिर बी (भी) कछु दर्शन नहि (नहीं), पायो प्राण उदास।
कहोजी प्रभु अब क्युं (क्यों) मिले सोचुं (चूं) जीकु (को) आज;
जन्म जुदाई यह भई कछु नहिं सुझत इलाज।
अंतर्यामी तब कहे "क्युं तुं (क्यों तू) होवे कृतार्थ?
प्रभु बकवत[1] फोकट[2] फिरे निसि-दिन ढुंढत (ढूंढत) स्वार्थ।"
मुख 'प्रभु' नाम पुकारता, अंतर में अहंकार;
दंभी ऐसे दंभ से, दि (दी) नानाथ मिलनार[3]?
ठगविद्या मं (में) निपुण भयो, प्रथम ठगे मा-बाप;
सकल जगत कुं (को) ठगत तुं (तू), अंत ठग रह्यो आप।
सुनते शुद्ध बुद्ध (सुध बुध) खुल गई, प्रकट्‌यो पश्चाताप;
उलट पुलट करीने (करके) गयो, आपहि खायो थाप।[4]

—बहरामजी मलबारी

[1] प्रभु के नाम का बकवास रटता हुआ; [2] व्यर्थ

[3] मिलनेवाले; [4] थप्पड़; गुजराती में इस शब्द का अर्थ धोखा भी होता है।

: ६ :

नीति के विषय में डार्विन[1] के विचार

जो भला और सच्चा है उसे अपनी इच्छा से ही करना, इसीमें हमारी भलमनसी है। आदमी की शराफत की सच्ची पहचान यह है कि वह पवन के प्रवाह से इधर-उधर भटकते हुए बादलों की तरह धक्का खाने के बजाय अपनी जगह पर अचल रहे और जो उसे उचित जान पड़े, वह करे और कर सके।

यह होते हुए भी हमारी वृत्ति किस रास्ते जाना चाहती है, यह हमें जान लेना चाहिए। हम

---

[1] डार्विन पिछली सदी में एक महान् यूरोपीय हो गया है। उसने शास्त्र की महती खोजें की हैं। उसकी स्मरणशक्ति और अवलोकन-शक्ति बड़ी जबर्दस्त थी। उसने कितनी ही पुस्तकें लिखी हैं, जो अति पठनीय और मननीय हैं। उसने बहुत-सी मिसालों और दलीलों से यह दिखाया है कि आदमी की आकृति की उत्पत्ति एक तरह के बंदरों से हुई है, यानी बहुत तरह के प्रयोग और बहुत-सी जांच-पड़ताल करते हुए उसे यह दिखाई दिया कि आदमी की शक्ल और बंदर की शक्ल में बहुत फर्क नहीं है। यह खयाल सही है या नहीं, इससे नीति के विषय का कुछ बहुत नजदीक का संबंध नहीं है। पर डार्विन ने ऊपर लिखा विचार प्रकट करने के साथ-साथ यह भी जताया है कि नीति के विचार मानव-जाति पर क्या असर डालते हैं। और डार्विन ने जो कुछ लिखा है, उसपर बहुतेरे विद्वानों की श्रद्धा है, इसलिए डार्विन के विचारों पर यह प्रकरण लिखा है।

जानते हैं कि हम हर तरह से अपने मालिक खुद नहीं हैं। हमसे बाहर की कितनी ही स्थितियां हैं, जिनका अनुसरण करते हुए हमें चलना होता है। जैसे जिस देश में हिमप्रदेश की-सी ठंड पड़ती है, वहां हमारी इच्छा हो या न हो, फिर भी शरीर को गर्म रखने के लिए हमें कायदे से कपड़े पहनने ही पड़ते हैं, यानी हमें समझदारी के साथ व्यवहार करना पड़ता है।

तब सवाल यह उठता है कि अपनी बाहर की और आस-पास की परिस्थिति को देखते हुए हमें नीति के अनुसार आचरण करना पड़ता है या नहीं, अथवा हम इस बात की कोई परवा नहीं कर पा रहे हैं कि हमारे बरताव में नीति है या अनीति।

इस प्रश्न पर विचार करते हुए डार्विन के मत की जांच-पड़ताल करना जरूरी होता है। डार्विन यद्यपि नीति के विषय पर लिखनेवाला पुरुष न था, फिर भी उसने बता दिया है कि बाहर की वस्तुओं के साथ नीति का लगाव कितना गहरा है। जो लोग यह सोचते हैं कि मनुष्य नीति का पालन करते हैं या नहीं, इसकी परवा हमें नहीं करनी है और दुनिया में केवल शारीरिक तथा मानसिक बल ही काम आता है, उन्हें डार्विन के ग्रंथ पढ़ने चाहिए। डार्विन के कथनानुसार मनुष्यों और दूसरे प्राणियों में भी जीते रहने का लोभ रहता है। वह यह भी कहता है कि जो इस संघर्ष में जीवित रह सकता है, वही विजयी माना

जाता है और जो योग्य नहीं है, वह जड़मूल से नष्ट हो जाता है; पर इस संघर्ष के मुकाबले में हमके वल शरीर-बल से टिक नहीं सकते ।

हम आदमी, भैंस और रीछ की तुलना करें तो मालूम होगा कि शरीर-बल में रीछ या भैंस आदमी से बढ़े हुए हैं और आदमी उनमें से किसीके साथ कुश्ती लड़े तो हार जायगा; पर यह बात होते हुए भी अपनी बुद्धि की बदौलत वह उनसे अधिक बली है । ऐसी ही तुलना हम मानव-जाति की जुदा-जुदा कौमों के बीच कर सकते हैं । युद्धकाल में जिसके पास अधिक बल या अधिक संख्यावाले आदमी हों वही जीते, ऐसा नहीं होता; बल्कि जिसके पास कला-कौशल का बल और अच्छे नेता होते हैं, वह जाति अल्पसंख्यक या शरीर-बल में कम हो तो भी विजयी होती है, यह दृष्टांत हमने बुद्धिबल का देखा ।

डार्विन हमें यह बताता है कि नीति-बल शरीर-बल और बुद्धि-बल दोनों से बढ़कर है और योग्य मनुष्य अयोग्य से अधिक टिक सकता है । इस बात की सच्चाई हम अनेक रूपों में देख सकते हैं । कितने ही लोग यह मानते हैं कि डार्विन ने तो हमें यही सिखाया है कि जो शूर है और शरीर-बल में भरपूर है, वही अंत में पार लगता है । और यों ऊपर-ऊपर से ही विचार करनेवाले लेभग्गू आदमी मान लेते हैं कि नीति हमारे लिए बेकार चीज है । पर डार्विन का यह

विचार बिलकुल न था। प्राचीन इतिहास तथा दंत-कथाओं से यह देखा गया है कि जो जातियां अनीतिमान थीं, वे आज नामशेष हो गई हैं। सोडम और गमोरा के लोग बड़े दुराचारी थे। इससे ये देश मिट गये। आज भी हम देख सकते हैं कि जो जाति या राष्ट्र अनीतिमान है, उसका नाश होता जा रहा है।

अब हम कुछ मामूली मिसालें लेकर देखें कि साधारण नीति भी मानव-जाति की सलामती के लिए कितनी जरूरी है। शांत स्वभाव नीति का एक अंग है। उसपर से देखने से ऐसा जान पड़ेगा कि घमंडी मनुष्य आगे बढ़ सकता है; पर थोड़ा विचार करके भी हम देख सकते हैं कि मनुष्य की गर्वरूपी तलवार अंत में अपने ही गले पर गिरती है। मनुष्य नशे का सेवन न करे, यह नीति का दूसरा विषय है। आंकड़े देखने से विलायत में यह देखने में आया है कि तीस बरस की उम्रवाले शराबी तेरह या चौदह बरस से अधिक नहीं जीते; पर निर्व्यसन मनुष्य ७० बरस की आयु भोगता है। व्यभिचार न करना नीति का तीसरा विषय है। डार्विन ने बताया है कि व्यभिचारी मनुष्य जल्दी नाश को प्राप्त होता है। उसके संतान पहले तो होती ही नहीं और हो तो मरियल-सी दिखाई देती है। व्यभिचारी मनुष्य का मन हीन हो जाता है और ज्यों-ज्यों दिन बीतते हैं उसकी शक्ल पागल की-सी होती जाती है।

जातियों की नीति का विचार करने पर भी हमें यही स्थिति दिखाई देगी। अंडमन टापू के पुरुष अपनी स्त्रियों को, ज्योंही बच्चे चलने-फिरने लायक हुए, त्याग देते हैं। अर्थात् परमार्थ बुद्धि दिखाने के बदले अत्यंत स्वार्थ-बुद्धि का परिचय देते हैं। नतीजा यह हुआ है कि उस जाति का धीरे-धीरे नाश होता जा रहा है। डार्विन बताता है कि पशुओं में भी एक हद-तक परमार्थ बुद्धि देखने में आती है। भीरु स्वभाव-वाले पक्षी भी अपने बच्चों को रक्षा करने के समय बल-वान बन जाते हैं। वह कहता है कि प्राणिमात्र में परमार्थ बुद्धि थोड़ी-बहुत भी न होती तो आज दुनिया में घासपात और जहरीली वनस्पतियों के सिवा शायद ही कोई जीवधारी होता। मनुष्य और दूसरे प्राणियों में सबसे बड़ा अंतर यही है कि मनुष्य सबसे अधिक परमार्थी है। दूसरों के लिए अर्थात् अपनी नीति के प्रमाण में अपने बच्चों के लिए, अपने देश के लिए, अपनी जान कुरबान करता आया है।

इस प्रकार डार्विन स्पष्ट रीति से बताता है कि नीति-बल सर्वोपरि है। ग्रीस की जनता यूरोप की आज की जनता से अधिक बुद्धिशाली थी, फिर भी जब उस जनता ने नीति का त्याग किया तब उसकी बुद्धि उसकी दुश्मन हो गई और आज वह जाति देखने में भी नहीं आती। जातियां, प्रजाएं न पैसे से टिकती हैं, न सेना से। वे एकमात्र नीति की

नींव पर ही टिक सकती हैं । अतः मनुष्य-मात्र का कर्त्तव्य है कि इस विचार को सदा मन में रखकर परमार्थरूपी परम नीति का आचरण करे !

: ७ :

नीति में सार्वजनिक कल्याण

अक्सर यह कहा जाता है कि संपूर्ण नीति में सार्वजनिक कल्याण समाया हुआ है। यह बात सही है। न्यायाधीश में अगर न्याय-बुद्धि हो तो जिन लोगों को उसकी न्यायी अदालत में जाना पड़े वे सुखी होते हैं। वैसे ही प्रीति, स्नेह, उदारता आदि गुण दूसरों के साथ होने पर ही प्रकट किये जा सकते हैं। वफादारी का बल भी हम एक-दूसरे से संबंध होने पर ही दिखा सकते हैं। स्वदेशाभिमान के विषय में तो कहना ही क्या ! वास्तविक स्थिति को देखने से यह दिखाई देगा कि नीति का एक भी विषय ऐसा नहीं है, जिसका फल अकेले नीति का पालन करनेवाले को ही मिलता है। अक्सर यह कहा जाता है कि सच्चाई आदि गुणों का सामनेवाले मनुष्य, विपक्षी के साथ कोई लगाव नहीं होता । पर हम झूठ बोलकर किसीको ठगें तो उससे विपक्षी की हानि होगी, यह बात हमें कबूल करनी होगी, तो

फिर यह बात भी कबूल करनी ही होगी कि हमारे सच बोलने से उसकी हानि होना रुकेगा।

वैसे ही जब कोई आदमी किसी खास कानून या रिवाज को नापसंद करके उसके बाहर रहता है तब भी उसके कार्य का असर जन-समाज पर होता है। ऐसा मनुष्य विचार-लोक में रहता है और विचारों की दुनिया अभी पैदा होने को है। उसकी वह परवा नहीं करता। ऐसे आदमी के लिए प्रचलित व्यवहार नीति-विशेष का अनादर करने के लिए यह खयाल भर होना काफी है कि उक्त नीति अच्छी नहीं है। ऐसा आदमी सदा दूसरों को अपने विचार के अनुसार आचरण कराने के यत्न में लगा रहेगा। ऐसे ही पैगंबरों ने दुनिया के चक्रों की गति फ़ेरी है।

मनुष्य जबतक स्वार्थी है अर्थात् वह दूसरों के सुख की परवा नहीं करता तबतक वह पशु-सदृश, बल्कि उससे भी गयाबीता है। मनुष्य पशु से श्रेष्ठ है, यह हम देख सकते हैं; पर यह तभी होता है जब हम उसे अपने कुटुंब का बचाव करते देखते हैं। वह उस वक्त मानव-जाति में और ऊंचा स्थान पाता है जब अपने देश या अपनी जाति को अपना कुटुंब मानता है। जब सारी मानव-जाति को वैसा मानता है तब उससे भी ऊंचे सोपान पर चढ़ता है, अर्थात् मनुष्य मानव-जाति की सेवा में जितना पीछे रहता है उस दर्जे तक वह पशु है अथवा अपूर्ण है। अपनी स्त्री के लिए, अपने

बेटे के लिए मुझे दर्द हो, पर उससे बाहर के आदमी के लिए मेरे दिल में दर्द न हो तो स्पष्ट है कि मुझे मानव-जाति के दुःख की अनुभूति नहीं है, पर स्त्री, बच्चे या कौम, जिसको मैंने अपना मान रखा है, उनके लिए भेद-बुद्धि या स्वार्थ-बुद्धि से कुछ दर्द होता है।

अतः जबतक हमारे मन में हरएक मानव-संतान के लिए दया न हो तबतक हमने नीति-धर्म का पालन नहीं किया और न उसे जाना। अब हम देख रहे हैं कि ऊंची नीति सार्वजनिक होनी चाहिए। हमसे संबंध रखनेवाला हर आदमी हमारे ऊपर ऐसा हक रखता है यानी हम सदा उसकी सेवा करते रहें, यह हमारा फर्ज है। हमें यह सोचकर व्यवहार करना चाहिए कि हमारा हक किसीके ऊपर नहीं है। कोई यह कह सकता है कि ऐसा करनेवाला आदमी इस दुनिया के रेले में पड़कर पिस जायगा, पर ऐसा कहना निरा अज्ञान है; क्योंकि यह जगत्-प्रसिद्ध अनुभव है कि ऐसी एक-निष्ठा से सेवा करनेवाले आदमी को खुदा ने हमेशा बचा लिया है।

इस नीति के पैमाने से मनुष्य-मात्र समान हैं। इसका अर्थ कोई यह न करे कि हर आदमी समान पद-अधिकार भोगता है, या एक ही तरह का काम करता है। उसका अर्थ यह है कि अगर मैं ऊंचा पद-अधिकार भोगता हूं तो उस पद की जिम्मेदारी उठाने की मुझमें शक्ति है। इससे मुझे गर्व से इतराना न

चाहिए और न यह मानना चाहिए कि दूसरे लोग, जो छोटी जिम्मेदारी उठाते हैं, मुझसे हेठे हैं। पूर्ण साम्य तो हमारे मन की स्थिति पर अवलंबित होता है। जबतक हमारे मन की यह स्थिति नहीं होती तबतक हम पिछड़े हुए हैं।

इस नियम के अनुसार एक जाति या राष्ट्र अपने स्वार्थ के लिए दूसरी जाति या राष्ट्र पर राज्य नहीं कर सकता। अमरीका की गोरी जनता का वहां के मूल निवासियों को दबा कर उनपर हुकूमत करना, यह नीति-विरुद्ध है। ऊंची शिक्षा-संस्कार वाली जाति का नीची जाति से साबका पड़े, तो उसका यह कर्त्तव्य होता है कि उसको उठा कर अपने बराबर कर ले। इस नियम के अनुसार राजा प्रजा पर हुकूमत करने वाला नहीं, बल्कि उसका नौकर होता है। अधिकारी अधिकार भोगने के लिए नहीं, बल्कि प्रजा को सुखी करने के लिए होता है। प्रजातंत्र राज्य में लोग स्वार्थी हों तो वह राज्य निकम्मा है।

फिर इस नियम के अनुसार एक राज्य में बसने वाले या एक कौम के आदमियों में जो बलवान हों उनका काम है दुर्बलों की रक्षा करना, न कि उनको कुचलना, उनका दलन करना। ऐसी राज्य-व्यवस्था में भूखों मरने वाले नहीं हो सकते और न यही हो सकता है कि कुछ लोगों के पास बेहद दौलत इकट्ठी हो जाय, इसलिए कि हम अपने पड़ोसी का दुःख देखते रहें और

सुखी रहें, यह हो नहीं सकता। परम नीति का अनुसरण करने वाले आदमी से धन बटोरने का काम होने वाला नहीं। ऐसी नीति दुनिया में थोड़ी दिखाई देती है, यह सोच कर नीतिमान को घबराना न चाहिए, क्योंकि वह अपनी नीति का मालिक है, उसके नतीजे का नहीं। नीति का आचरण न करने से वह दोषी माना जायगा; पर उसका असर जन-समाज पर न हो तो कोई उसको दोष नहीं दे सकता।

: ८ :

समाप्ति

"मैं जिम्मेदार हूं," "यह मेरा फर्ज है," यह विचार मनुष्य को हिला देता है और अचंभे में डाल देता है। गैबी आवाज की प्रतिध्वनि सदा हमारे कान में पड़ा करती है—"मानव, यह काम तेरा है। तुझे खुद हारना या जीतना है। तुझ जैसा तू ही है, क्योंकि प्रकृति ने दो समान वस्तुएं कहीं बनाई ही नहीं। जो फर्ज़ तुझको अदा करना है वह तूने अदा न किया तो दुनिया के सालाना चिट्ठे में घाटा रहा ही करेगा।"

यह फर्ज, जो मुझे अदा करना है, क्या है ? कोई कहेगा कि—

आदम को खुदा मत कहो, आदम खुदा नहीं।
लेकिन खुदा के नूर से आदम जुदा नहीं॥

और कहेगा कि इस पद्य के अनुसार मुझे यह मानकर कि मैं खुदा का नूर हूं, चुपचाप बैठे रहना चाहिए। दूसरा आदमी कहेगा कि मुझे अपने आसपास के लोगों के साथ हमदर्दी दिखाना, भाईचारा रखना चाहिए। तीसरा कहेगा कि मां-बाप की सेवा, बीवी-बच्चों का भरण-पोषण और भाई-बहन-मित्रों के साथ उचित व्यवहार करना चाहिए। पर इन सभी गुणों में मैं खुद अपने प्रति भी उसी रीति से व्यवहार करूं, यह मेरे समस्त कर्त्तव्य का अंग है। जबतक मैं अपने आपको न पहचानूं तबतक दूसरे को कैसे पहचान सकूंगा? और जबतक पहचानूंगा नहीं तबतक उनका सम्मान कैसे कर सकूंगा? बहुतेरे यह मानने लगे हैं कि जिन बातों का दूसरों से संबंध होता हो उनमें तो हमें कायदे से व्यवहार करना चाहिए, पर जबतक हमारे कामों का दूसरों से संबंध न हो तबतक हम अपनी मर्जी के मुताबिक जैसे चाहें वैसे व्यवहार कर सकते हैं। जो आदमी ऐसा मानता हो, वह बिना समझे बोलता है। दुनिया में रहकर कोई भी आदमी बिना अपनी हानि किये खुदमुख्तार या स्वच्छन्द होकर व्यवहार नहीं कर सकता।

अब हमने देखा कि हमारा फर्ज खुद हमारी अपनी तरफ क्या है। अव्वल तो हमारे एकांत के

आचरण की खबर खुद हमारे सिवा दूसरों को होती नहीं, ऐसे आचरण का असर दूसरों पर होता है, इसलिए हम जिम्मेदार होते हैं, इतना ही सोचना काफी नहीं है। उसका असर दूसरों पर होता है, इसलिए भी हम उसके जवाबदेह हैं। हर आदमी को चाहिए कि अपने उत्साह को काबू में रखे। एक महान् पुरुष का कहना है कि किसी भी आदमी का खानगी चाल-चलन मुझको बता दो, मैं तुरन्त बता सकता हूं कि वह आदमी कैसा होगा और है। ऐसे ही कारणों से हमारे लिए उचित है कि अपनी इच्छाओं को लगाम देकर रखें। यानी हमें शराब नहीं पीना चाहिए, पेटू की तरह ठूंस-ठूंस कर नहीं खाना चाहिए, नहीं तो अन्त में शक्तिहीन होकर हमें अपनी आबरू गंवानी होगी। जो आदमी विषय-मार्ग से दूर रहकर अपने शरीर, मन, बुद्धि और प्राण की रखवाली नहीं करता वह बाहर के कार्यों में सफलता नहीं पा सकता।

यों विचार करते हुए मनुष्य अपनी अंतर्वृत्तियों को स्वच्छ रखकर सोचता है कि इन वृत्तियों का क्या उपयोग करूं। जीवन में कोई निश्चित उद्देश्य होना ही चाहिए। हम जीवन के कर्त्तव्यों की खोज करके उनके पालन की ओर मन का झुकाव न रखें तो हम बिना पतवार की नाव की तरह भरे दरिया में डूबते-उतराते रहेंगे। हमारा ऊंचे-से-ऊंचा कर्त्तव्य यह है कि हम मानव-जाति की सेवा करें और उसकी स्थिति

सुधारने के यत्न में योग दें। इसमें सच्ची ईश्वर-स्तुति, सच्ची बंदगी आ जाती है। जो आदमी भगवान का काम करता है, वह भगवान का जन है, खुदा का बंदा है। खुदा का नाम लेने वाले ढोंगी, धूर्त बहुतेरे दुनिया में विचरा करते हैं। तोता 'राम-राम' कहना भी सीख लेता है, इससे उसे कोई राम का भक्त, सेवक नहीं कहता। मनुष्य-जाति को यथायोग्य स्थिति प्राप्त कराने का उद्देश्य हर आदमी अपने सामने रख और उसका अनुसरण कर सकता है। वकील ऐसे उद्देश्य से वकालत कर सकता है, व्यापारी व्यापार कर सकता है। जो आदमी इस व्रत का पालन करता है, वह कभी नीति-धर्म से डिगता नहीं। उससे विचलित होकर मानव जाति को ऊपर उठाने का उद्देश्य पूरा किया ही नहीं जा सका।

अब हम ब्योरेवार विचार करें। हमें सदा यह देखते रहना पड़ता है कि हमारा आचरण सुधार की ओर जा रहा है या बिगाड़ की ओर। बनिज-व्यापार करने वाला हरएक सौदा करते हुए इस बात का विचार करेगा कि मैं अपने आपको या दूसरे को ठग तो नहीं रहा हूं। वकील और वैद्य ऊपर बताई हुई नीति का अनुसरण करते हुए मवक्किल और रोगी के हिताहित को अधिक सोचेगा। मां बच्चे का पालन करते हुए सदा यह डर मन में रखकर चलेगी कि कहीं झूठे स्नेह या अपने दूसरे स्वार्थ से वह बिगड़ न जाय।

ऐसा विचार रख कर मजदूरी करने वाला मजदूर भी अपने कर्त्तव्य का खयाल रखकर कार्य करेगा। इस सारे विवेचन का निचोड़ यह निकला कि मजदूर अगर नीति-नियम का पालन करते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करे तो वह अपने आचार-व्यवहार में अपने आपको खुद-मुख्तार मानने वाले धनी, व्यापारी, वैद्य या वकील से श्रेष्ठ माना जायगा। मजदूर खरा सिक्का है और व्यापारी, वकील आदि अधिक बुद्धि या अधिक पैसे वाले होते हुए भी खोटे सिक्के जैसे हैं। इस प्रकार हम फिर यह देख रहे हैं कि हर आदमी उपर्युक्त नियम निभाने में समर्थ है, चाहे वह किसी भी स्थिति में क्यों न हो। मनुष्य का मूल्य उसके चरित्र, उसके चाल-चलन पर आश्रित होता है, उसके पद-दरजे पर नहीं। उसके चरित्र की परख उसके बाहर के कामों से नहीं होती, उसकी अन्तर्वृत्ति जान कर की जा सकती है। एक आदमी एक गरीब को अपनी नजर से दूर करने के लिए एक डालर देता है, दूसरा उस पर तरस खाकर, स्नेह से आधा डालर देता है। इनमें आधा डालर देने वाला नीतिमान है और पूरा डालर देने वाला पापी है।

इस सारे विवेचन का सार यह निकला कि जो आदमी स्वयं शुद्ध है, किसी से द्वेष नहीं करता, किसी से नाजायज फायदा नहीं उठाता, सदा पवित्र मन रख कर व्यवहार करता है, वही आदमी धार्मिक

है, वही सुखी है और वही पैसेवाला है। मानव-जाति की सेवा उसी से बन सकती है। खुद दियासलाई में आग न हो तो दूसरी लकड़ी को कैसे सुलगायगी ? जो आदमी खुद नीति का पालन नहीं करता वह दूसरे को क्या सिखायगा ? जो खुद डूब रहा हो वह दूसरों को कैसे पार उतारेगा ? नीति का आचरण करने वाला दुनिया की सेवा किस तरह करनी होगी, यह सवाल कभी उठता ही नहीं, क्योंकि उसके लिए यह सवाल पैदा ही नहीं होता। मैथ्यू आरनाल्ड कहता है, "एक वक्त था जब मैं अपने मित्र के लिए स्वास्थ्य, विजय और कीर्ति चाहा करता था। अब मैं वैसी कामना नहीं करता। इसलिए कि मेरे मित्र का सुख-दुख उनके होने न होने पर अवलंबित नहीं। इससे अब मैं सदा यही मानता हूं कि उसकी नीति सर्वदा अचल रहे।" इमर्सन कहता है कि भले आदमी का दुःख भी उसका सुख है और बुरे का तो पैसा, उसकी कीर्ति भी उसके और दुनिया के लिए दुखःरूप है।

ऊपर के विषय से मेल खानेवाली कविता :

गर पादशाह[1] होकर अमल[2] मुल्कों हुआ तो क्या हुआ ?
दो दिन का नरसिंगा बजा, भों भों हुआ तो क्या हुआ ?
गुलशोर मुल्क व माल[3] का कोसों हुआ तो क्या हुआ ?

---

[1]बादशाह; [2]हुकूमत; [3]देश और धन

1554

या हो फ़क़ीर आज़ाद के रंगों हुआ तो क्या हुआ ?
गर यूं हुआ तो क्या हुआ और वूं हुआ तो क्या हुआ ? (१)

दो दिन तो यह चर्चा हुआ, हाथी मिला हाथी मिला,
बैठा अगर होदे उपर[१] या पालकी में जा चढ़ा,
आगे नक्कारा और निशां, पीछे को खोजों का परा[२];
देखा तो फिर इक आन में, हाथी न घोड़ा न गधा।
गर यूं हुआ तो क्या हुआ और वूं हुआ तो क्या हुआ ? (२)

अब देख किसको शाद[3] हो और किस पै आँखें नम करे ?
यह दिल बिचारा एक है, किस-किसका अब मातम करे ?
या दिल को रोबे बैठकर, या दर्द दुःख में कम करे ?
यां का यही तूफान है अब किसकी जूती ग़म करे ?
गर यूं हुआ तो क्या हुआ और वूं हुआ तो क्या हुआ ? (३)

गर तू 'नज़ीर' अब मर्द है तो जाल में भी शाद हो,
दस्तार[४] में भी हो खुशी, रूमाल में भी शाद हो,
आजादगी भी देख ले, जंजाल में भी शाद हो,
इस हाल में भी शाद हो और उस हाल में भी शाद हो,
गर यूं हुआ तो क्या हुआ और वूं हुआ तो क्या हुआ ? (४)

—नज़ीर

---

[१] ऊपर; [२] बेगमों की पालकियों की रक्षा के लिए हिजड़े सिपाहियों की क़तार; [3] प्रसन्न, ख़ुश; [४] पगड़ी।

गांधीजी की अन्य पुस्तकें

१. आत्मकथा
२. प्रार्थना-प्रवचन (दो भाग)
३. गीता-माता
४. पंद्रह अगस्त के बाद
५. धर्मनीति
६. ब्रह्मचर्य (दो भाग)
७. आत्मसंयम
८. दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह
९. अनीति की राह पर
१०. गीताबोध
११. अनासक्ति-योग
१२. ग्राम-सेवा
१३. बापू की सीख
१४. आश्रमवासियों से
१५. हमारी मांग
१६. एक सत्यवीर की कथा
१७. सर्वोदय
१८. हिंद-स्वराज्य
१९. हृदय-मंथन के पांच दिन
२०. मंगल-प्रभात
२१. गांधी-शिक्षा (तीन भाग)
२२. आज का विचार (दो भाग)
२३. गांधीजी ने कहा था (नौ भाग)

सस्ता साहित्य मण्डल

सैंतीस नये पैसे